**Issue-11; Vol.01, Sept. 2020** **Impact Factor: 6.003 (I2OR)**
**ISSN–2231-1130**
●●●●VEETHIKA●●●

# मनुष्य सृष्टि का आदि स्थान और वर्णाश्रमबन्ध

**डॉ0 प्रेरणा माथुर**
सहायक आचार्य, प्राच्य संस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
**डॉ० रोशन सिंह**
सहायक आचार्य नूर जहाँ डिग्री कॉलेज हरदोई

***शोध–सार***

*भारतीय मनीषियों की रुचि प्रायः अध्यात्म यथा लोक–परलोक, ब्रह्म, जीवात्मा,जगत् आदि दार्शनिक विषयों के अध्ययन की ओर अधिक रही है, ऐसी अवधारणा पाश्चात्य विद्वानों की भारतीय विद्वानों के प्रति प्राचीन काल से ही रही है। इतिहास जैसे विषय की ओर उन्होनें कोई ध्यान नहीं दिया किन्तु उनकी यह अवधारणा उस समय तक थी जब तक वे भारतीय वांग्मय से अनभिज्ञ थे। वेद, स्मृति, गीता, पुराण, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि प्रौढ़ ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् उन्होनें भारतीय ऐतिहासिक चिन्तन को भी अद्वितीय स्वीकार किया है। प्रस्तुत शोधपत्र में मानवसृष्टि का आदिस्थान भारतद्वीप, पूर्णावयव मानव की उत्पत्ति,वर्णाश्रम श्रृखला का अनादित्व आदि के विवेचन के साथ–साथ मनुष्य के अधोगति को रोकने के लिए भगवान मनु द्वारा वर्णाश्रमबन्ध की स्थापना, उसके अनादित्व, औपनिषदिक दृश्य आदि पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है।*

***मुख्य शब्दः*** *मनुष्य सृष्टि, वर्णाश्रमबन्ध*

यह तो सर्वतन्त्रसिद्धांत है कि वेद, जो कुछ इस समय उपलब्ध होता है, वह पृथ्वी की सबसे पुरानी पुस्तक है। इस कारण वेद और वेद के भाष्य ग्रन्थरूपी भगवान वेदव्यासकृत पुराणों में जो विषय मिलेगा, उसको सबसे अधिक प्रामाणिक समझना उचित है। वेद और शास्त्रों में जहाँ–जहाँ सृष्टि प्रारंभ होती है, तो पूर्णावयव जीव–समूह उत्पन्न होते हैं और सबसे पूर्णावयव आत्माएँ सबसे पहिले उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार सबसे उन्नत स्थान में सृष्टि पहिले प्रकट होती है। जगत्सृष्टिकर्ता भगवान ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड सृष्टि की प्रथम अवस्था में जब जीवनसृष्टि का प्रारंभ किया, तो वह ब्राह्म स्वर्ग में किया। क्योंकि ब्राह्म स्वर्ग ब्रह्माण्ड का सबसे उत्तम स्थान है। चतुर्दश भुवनों में सबसे ऊपर के जन, तप और सत्य लोक को ब्राह्म स्वर्ग कहते हैं। उस समय सबसे प्रथम सनक–सनन्नादि चार महापुरूष ब्राह्म स्वर्ग में ही प्रकट हुए। वे सब प्रकार से पूर्णवयव थे। उनकी अवस्था परमहंस की अवस्था थी। जीवनमुक्त परमहंस महात्माओं में वासना का लेशमात्र नहीं रहता है। इस कारण वे महात्मा कहलाते हैं। यही परमहंस की अवस्था मनुष्य–जीवन की सर्वोत्तम अवस्था है और यही मनुष्य का अन्तिमलक्ष्य है। महात्माओं का अन्तःकरण हर समय ब्रह्म में लीन रहता है, इस कारण वे ब्रह्मरूपी ही हैं। सुतरां ऐसे महात्माओं के द्वारा भगवान् ब्रह्मा का सृष्टिकार्य कुछ भी अग्रसर नहीं हो सका। क्योंकि सृष्टि कार्य में वासना की आवश्यकता होती है। इस कारण वे वासनारहित महात्मा ब्राह्मस्वर्ग में ही रहे। अनन्तर भगवान् ब्रह्मा ने प्राजापत्य स्वर्ग, जो ऊपर का चतुर्थ अर्थात् महर्लोक है, उसमें सृष्टि आरंभ की और भगवान् की इच्छामात्र से यथापूर्व दस प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई।

**स्नकश्च सनन्दश्च सनातनमथात्मभूः।**
**सनत्कुमारश्च मुनीन्निष्क्रियानन्नूर्ध्वरतसः।।**
**वान्वभाषे स्वभूः पुत्रान्प्रजाः सृजत पुत्रकाः।**
**से नैच्छन्मोक्षधर्माणो बासुदेवपरायणाः।।**
**अथाऽभिध्यायतः सर्ग दश पुत्राः प्रजज्ञिरे।**
**भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः।।**
**मरीचिरत्र्यङिरसौ पुलस्त्यो पुलहः क्रतुः।**
**भुगुर्वस्ष्टिो दक्षश्च दशमस्तु च नारदः।।**

ये प्रजापतिगण उच्च श्रेणी के देवता थे। उन्होंने अपनी इच्छाशक्ति के द्वारा भगवान् ब्रह्मा को उनके सृष्टि कार्य में पूरी सहायता दी और ब्रह्माण्ड के चौदह लोकों में यथायोग्य स्थानों में ऋषि, देवता, पितर, किन्नर, गन्धर्व, असुर, मनुष्य और स्वेदज, अण्डजादि चतुर्विध भूतसंघ की सृष्टि हो गयी। यह सब सृष्टि भी पूर्णावयव हुई–

**एवं मनूंस्तु सप्तान्यानस जन्भूरितेजसः।**
**देवान्देवनिकायांष्च महर्षिश्चामितौजसः।।**
**यक्षरक्षः पिषाचांश्चगन्धर्वाप्सरसोऽसुरान्।**
**नागान्सर्पान्सुपर्णाश्च पितृणां च पुथग्गणान्।।**
**किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विविधांश्च विद्यमान्।**
**पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालांडोभयतोदतः।।**
**कृमिकीटपतडांश्च यूका मक्षिकमत्कृणम्।**
**सर्व च दंशमषकं स्थावरं च पृथग्विधम्।।**
**अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रका मत्स्याश्च कच्छपाः।**
**यानि चैयं प्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च।।**

जैसे आजकल के पदार्थ विद्यासेवी विद्वान मानते है कि, बन्दर से मनुष्य सृष्टि हुई, वह पूर्णावयव हुई। दूसरी ओर चाहे देवता, चाहे मनुष्य, चाहे उद्विज्ज, स्वेदज, जरायुज, गो, महिष, हाथी आदि की जो कुछ सृष्टि हुई, वह बच्चे के रूप में नहीं हुई। पूर्णावयव हुई और स्त्री–पुरूष पूर्णावयव उत्पन्न हुए। उसके बाद मैथुनी सृष्टि होने पर गर्भ और बच्चे का सिलसिला चला। यह सिद्धांत वेदसम्मत और शास्त्रसम्मत ही नहीं, दार्शनिक विज्ञानसम्मत भी है। उस समय इस मनुष्य लोक में जो मनुष्य सृष्टि हुई, वह पूर्णावयव हुई, इसमें तो कोई संदेह ही नहीं है। जब भगवान सर्वषक्तिमान और पूर्ण हैं और भगवान ब्रह्मा उनके ही रजोगुण के अधिष्ठाता हैं, तो उनकी की हुई सृष्टि पूर्ण ही होगी। मनुष्य की सृष्टि में अपूर्णता रहती है, इस कारण मनुष्य की सृष्टि में शक्ति का क्रमविकास होता है। परंतु ब्राह्मी सृष्टि में पूर्ण शक्तिसम्पन्न जीवन उत्पन्न होते हैं। यह दार्शनिक युक्ति से भी सिद्ध है। शास्त्रों में लिखा है कि, सबसे पहिले जो मनुष्य सृष्टि हुई, उसमें सब ब्राह्मणों के जो लक्षण कहे गये हैं, वे पूर्णावयव मनुष्य में ही हो सकते हैं। वेद और शास्त्रों के अनुसार ब्राह्मणों का शरीर, मन और बुद्धि तीनों सत्वगुण प्रधान अर्थात पूर्णावयव होते हैं। इसी कारण पहिली सृष्टि में जो मनुष्य उत्पन्न हुए, वे पूर्णवयव देहधारी ब्राह्मण हुए। विरूद्धमतावलम्बिगण यह शंका कर सकते हैं कि, प्रथम जब सब ब्राह्मण हुए, तब न ब्राह्मणों का अनादित्व सिद्ध होता है, न वर्णाश्रम का ही। इस श्रेणी की शंका का समाधान सुगम है। प्रत्येक कल्प में वेदों का प्राकट्य होता रहता है, तो भी जैसे वेद अनादि हैं और ''यथापूर्वमकल्पयत्'' अर्थात् सृष्टि पहिले थी उसी के अनुसार कल्पकल्पान्तर में फिर–फिर होती रहती है, इस सिद्धांत से जैसी वह अनादि है, वैसी ही ब्राह्मण सृष्टि भी अनादि है। उसके मलिन हो जाने पर उसका अधिक पतन न हो और मनुष्य जाति बर्बर न हो, इसलिए वर्णाश्रम व्यवस्था भगवान मनु के द्वारा बाँधी जाती है। प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में ऐसा ही हुआ करता है। इस कारण वर्णाश्रम श्रृंखला भी अनादि है और इसी विचार परंपरा से मनुष्य सृष्टि के आदि स्थान भारतद्वीप को ही हम सर्वादि चैतन्यभूमि करके मान सकते हैं–

**श्रीकुण्ड समासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।**
**पितामहं नमस्कृत्य गोसहस्रफलं लभेत्।।**
**ततो गच्छेत धर्मज्ञ विमलं तीर्थमुत्तमम्।**
**अद्यापि यत्र दृश्यन्ते मत्स्याः सोवर्णराजताः।।**
**वितस्ता समासाद्य सन्तर्प्य पितृदेवताः।**
**नरः फलमवाप्नोति वाजपेयस्य भारत।।**
**काश्मीरेश्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च।**
**वितस्ताख्यमिति ख्यातं सर्वपापप्रमोचनम्।**
**ततो गच्छेत वढ़वां त्रिशुः लोकेषु विश्रुताम्।**
**पश्चिमायान्तु सन्ध्यायामुपस्पृश्य यथाविधि।।**
**चरूं सप्तार्चिषे राजन् यथाशक्ति निवेदयत्।**

**पितृणामक्षयं दानं प्रवदन्ति मनीषिणः।।**
**ऋषयः पितरो देवा गन्धर्वाप्ससरसां गणाः।**
**गुह्यकाः किन्नरा यक्षाः सिद्धा विद्याधारा नराः।।**
**राक्षसा दितिजा रूद्रा ब्रह्मा च मनुजाधिप।**
**नियतं परमां दीक्षामास्थायाब्दसहस्रिकीम्।।**
**विष्णोः प्रसादनं कुर्व श्रपयंस्तथा।।**
**सप्तभिः सप्तभिष्चैव ऋग्मिस्तुष्टाव केशवम्।।**

यह तो सर्वतन्त्रसिद्धांत है कि, चतुदर्शभुवनों में से भूर्लोक के अन्तर्गत जम्बुद्वीप के एक विशेष विभाग में भारतवर्ष रूपी लोक में केवल मनुष्यों का आवास है और यहीं वे जन्म सकते हैं। शेष ब्रह्माण्ड का जितना अंश है, वहाँ मनुष्य नहीं जन्मते। क्योंकि वह सब भूमि या तो देवभूमि है, या असुरभूमि है। मनुष्य सृष्टि भारतवर्ष में ही हुई है, जिसको इस समय 'वर्ल्ड' अथवा दुनिया कहते हैं। वेद और वेदसम्मत शास्त्रों के अनुसार यह सिद्धान्त किया जा सकता है कि भारतवर्ष के नवखण्डों में से भारतद्वीप नामक खण्ड, जिसको आर्यावर्त्त, हिमवर्ष, मोक्षभूमि आदि भी कहते हैं, उसी में सृष्टि की प्रथम अवस्था में मनुष्य सृष्टि प्रथम हुई। वह भी पूर्णवयव होने से उस समय सब ब्राह्मण ही उत्पन्न हुए। भारतद्वीप के किस स्थानविशेष में पहिले मनुष्य सृष्टि हुई, इसका उल्लेख श्री महाभारत नामक पंचम वेद में इस प्रकार पाया जाता है कि, पंजाब प्रान्त की उत्तरी सीमा में वितस्ता (जेलम) की शाखानदी देविका नामक नदी के तट पर सप्तचरू तीर्थ के पास मनुष्य की प्रथम सृष्टि ब्राह्मण शरीर में हुई। यह मनुष्य सृष्टि क्रमशः आर्यावर्तव्यापी और तदनन्तर भारतद्वीपव्यापी हुई। उस सृष्टि की प्रथम अवस्था में मनुष्य सृष्टि अति सदाचारी थी और सब ब्राह्मण धर्म के पालन करने वाले थे। तदनन्तर मनुष्य सृष्टि अनार्य होकर सारे भारतवर्ष भर में अर्थात सारी पृथ्वी में फैल गयी और अब भी फैली हुई है। वह अब भी सभ्य–असभ्य जातियों के रूप से पृथ्वी में विद्यमान है। इसके प्रमाण भी शास्त्रों में स्पष्टरूप से मिलते हैं।

**प्रजापतिकामयत प्रजायेयेति स मुखतसिवृतं निरमितीत तमग्निर्देवता अन्वसृज्यत–ब्राह्मणों मुनष्यायां अजः पशूनां, यस्मात्ते मुख्याः, बाहुभ्यां पंचदशं निरमिमीत तमिन्द्रों देवता अन्वसृज्यत–राजन्यों मनुष्याणां अविः पशूनां तस्मात्ते वीर्यवन्तः, मध्यतः सप्तदशं निरमिमीत तं विश्वेदेवा देवता अन्वसृज्यन्त–वेश्यो मनुष्याणां गावः पशूनां, सोडन्येभ्यो भूयिष्टा हि देवता अन्वसृज्यन्त–शूद्रो मनुष्याणां अश्वः पशुनाम्।।**

आधुनिक ऐतिहासिकगण कल्पना देवी की सहायता से मनुष्य सृष्टि के आदि स्थान का निर्णय करने में कई तरह की कल्पनाएँ किया करते हैं। यथाः हिमाचल के उत्तर तिब्बत में कोई–कोई आदि सृष्टि स्थान की कल्पना करते हैं। कोई इसको मध्य एशिया बताते हैं। कोई एशिया माइनर बताते हैं और कोई उत्तर ध्रुव स्थान अर्थात ग्रीनलैण्ड और नार्वे के उत्तर भाग को बताते हैं। इन चारों मतों की पृष्टि के लिये किसी प्राचीन पुस्तक का सहारा इन चारों में से कोई नहीं लेता। प्रधानतः कल्पना का ही सहारा चारों मतवाले लेते हैं। इनमें में एक मतवाले केवल ज्योतिष शास्त्र का सहारा लेते हैं और वे यह प्रमाण देते हैं कि, अमुक नक्षत्र अमुक समय भारतवर्ष में नहीं था और अमुक स्थान में दिखायी देता था। वेद में इसका प्रमाण मिलता है। जो दल इस प्रकार के मानने वाले हैं, उन्होंने इस विषय का अनुशीलन नहीं किया है कि, हमारी पृथ्वी का नाम भारतवर्ष और जिसको हम भारतवर्ष समझे हुए है, वह भारतद्वीप है। सुतरां ज्योतिष शास्त्र की सहायता लेने वालों की यह युक्ति बहुत सुगमता से खण्डित हो जाती है। दूसरी युक्ति दूसरा दल यह देता है कि, एशिया माइनर के बहुत से स्थानों और नदियों के प्राचीन नाम भारतद्वीप के स्थानों पर नदियों से मिलते जुलते पाये जाते हैं, इस कारण एशिया माइनर अपना प्राचीन देष है। बुद्धिमान के निकट उनकी यह युक्ति ही उनके

सिद्धांत का खण्डन करती है। भारतद्वीप रूपी आर्यो की आदि निवास भूमि से जब आर्यगण किसी विशेष कारण से एशिया माइनर में जा बसे, तो वहाँ के स्थान, नदी, पर्वत आदि के नामकरणों में उन्होंने अपनी आदि जन्म भूमि भारतद्वीप की ही स्मृति जागृत रखी थी। यदि यह युक्ति मानी जाय, तो उनकी पूर्व युक्ति आप ही निर्बल हो जाती है। अन्य मतावलम्बियों के निकट सिवाय कल्पना के इस प्रकार की कोई न ज्योतिष आदि की युक्ति है और न नामादि का ही कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है। कोई शास्त्रीय युक्ति किसी के समर्थन में नहीं पायी जाती। अतः एक ओर केवल कल्पनाप्रसूत बालू का बाँध है और दूसरी ओर समाधिसम्भूत पूज्यपाद महर्षियों के कालज्ञान और वेद–शास्त्रों के प्रत्यक्ष प्रमाण रूपी प्रचण्ड पर्वतों के वंध दृढ़ता से स्थित हैं। जो निष्पक्ष होकर विचार करेंगे, उनके निकट उक्त पार्वत्यबंध स्थिर रहेंगे और बालू के बन्ध ढह जायेंगे।

प्रथम तो मनुष्य सभ्यता का पुराने से पुराना पता भारतद्वीप रूपी हिंदुस्थान में जैसा लगता है, वैसा भारतवर्ष रूपी पृथ्वी के और किसी देश में नहीं लगता। यदि मनुष्य सृष्टि आदिकाल में पूर्णावयव हुई, यह स्वीकार किया जाये, तो जिस देष में मनुष्य सभ्यता की प्राचीनता का, दर्शनों का शिल्पादि का और वेद जैसे प्राचीन ग्रंथों का आविर्भाव हुआ है, वही देश मनुष्य की आदि निवास भूमि हो सकता है। जहाँ उत्पन्न हुए मनुष्य जगत की सभ्यता के पथ–प्रदर्शक और नाना विधाओं के आदि आविष्कर्ता बने, उसी भूमि में आदि मनुष्य सृष्टि हुई, यह स्वतः सिद्ध है। द्वितीयतः, जब साधारण विचार से देखने में आता है कि, भारतद्वीप की प्रकृति पृथ्वी भर के सब देषों की प्रकृति से पूर्ण है और उसका महत्व प्राचीनकाल से ही देखने में आता है, तो पूर्णावयव मनुष्य आदि सृष्टि में यहीं जन्म ले सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता। भारतद्वीप का पर्वतराज हिमालय पृथ्वी के सब पर्वतों से सर्वोन्नत, सब ऐश्वर्यों से पूर्ण और अतिसुंदर है। भारतद्वीप में ही गंगा जैसी नदी प्रवाहित होती है, जिसके जल की आजकल के साइण्टिस्टों ने परीक्षा करके सिद्ध किया है कि, वह जल सर्वरोगहारी है। भारतद्वीप के विभिन्न प्रान्तों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों जाति की भूमियाँ विद्यमान हैं। भारतद्वीप की भूमि में सब प्रकार के अन्न और सब प्रकार के फल उत्पन्न होते और हो सकते हैं। यह भारतद्वीप का ही सौभाग्य है कि, यहाँ नाना प्रकार के अन्न और सब प्रकार के फल उत्पन्न होते और हो सकते हैं। यह भारतद्वीप का ही सौभाग्य है कि, यहाँ नाना प्रकार के रसाल (आम) होते हैं। छहों ऋतुओं का यहीं विकास यथासमय होता है और भारतद्वीप ही ऐसा देश है कि, जहाँ एक काल में छहों ऋतु कहीं–न–कहीं विद्यमान रहते ही हैं। इससे भारतद्वीप की भूमि की पूर्णता स्वतः सिद्ध होती है और इन सब कारणों से भारत द्वीप की भूमि ही आदिकाल में पूर्णावयव मनुष्य सृष्टि को उत्पन्न करने की शक्ति रखती है, यह सुगमता से सिद्ध हो सकता है।

वैदिक दर्शकों का यह दृढ़ सिद्धांत है कि, मनुष्य के अतिरिक्त उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुजरूपी चतुर्विध भूतसंघ प्रकृतिमाता के आज्ञाधीन होकर चलते हैं। उनकी आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि की क्रियाएँ, उनकी जीवनयात्रा सब प्रकृतिमाता के इंगित के अनुसार ही होती रहती है। चतुर्विध भूतसंघों में जिस जीवन का जो स्वभाव है, उसका विरूद्धाचरण वह कर नहीं सकता। गौ का यदि मांस खिलाया जाये अथवा सिंह को घास खिलाया जाये, तो वह नहीं खायेगा और मर जायेगा। असमय में उन सब चतुर्विध भूतसंघों के जीवों में सृष्टि उत्पन्न करने की क्रिया हो ही नहीं सकती। उनमें जब यह क्रिया होती है, तो योग्यकाल में ही हुआ करती है। उन सब जीवों की चेष्टाएँ प्रकृतिमाता के सम्पूर्ण अधीन रहती हैं, इसको बुद्धिमानमात्र ही स्वीकार करेंगे। यही कारण है कि, उनमें धर्म और अधर्म, पाप और पुण्य की जिम्मेवारी है और न यह उनका अधिकार ही माना गया है। मनुष्य जीव में इसके विरूद्ध अधिकार स्वतः ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के पूर्णावयव जीव होने के कारण उसमें स्वाधीनता आ

जाती है और यह आहार, निद्रा, भय, मैथुनादि की क्रियाएँ अपनी इच्छा से कर सकता है। वह प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करके स्वेच्छाचारी भी बन सकता है। यही कारण है, कि मनुष्य जाति उन्नत से उन्नत रूप को प्राप्त करके भी नीचे की ओर गिरा करती है और यही कारण है कि, मनुष्य में अधर्म चेष्टा को रोककर धर्मचेष्टा के बढ़ाने का प्रयत्न सब धर्मों और सब देशों में यथासंभव किया जाता है। पृथ्वी के इतिहास के पाठ करने से यह ज्ञात होगा कि, सब देशों के इतिहास हाथ उठाकर साक्षी दे रहे हैं कि, जिस मानव जाति में वर्णाश्रम श्रृंखला नहीं थी, वे सब मनुष्य जातियाँ कालांतर में काल के कवल में पहुँच गयी हैं। जहाँ तक कि, प्रबल पराक्रान्त जगद्विजयिनी ग्रीक जाति का केवल नाम रह गया है और असल ग्रीक जाति पृथ्वी से उठ गयी है। इसी तरह जगद्विजयिनी और वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता की गुरू रोमन जाति का तो नाम तक लुप्त हो गया है और उसकी जगह एक वर्तमान इटालियन जाति उस देश पर आधिपत्य कर रही है।

प्रकृति का प्रवाह निम्नगामी हुआ करता है। प्रकृति के इसी स्वाभाविक नियम के अनुसार सृष्टि के आदिकाल में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों में मैथुनी सृष्टि के आगे बढ़ने पर क्रमशः उनमें के नर नारी गण नीचे की ओर गिरने लगे। उनमें कर्म संकरता आने लगी और वे ब्राह्मणों के उन्नत अधिकार से च्युत होने लगे। शास्त्रों में प्रमाण है कि, सृष्टि की इस दशा में सृष्टिकर्ता भगवान ब्रह्माजी ने काल के राजा मनु नामक एक देवता को उत्पन्न किया और देवलोक के कालराज राजा मनु ने इस भारतद्वीप में आकर उस कर्म संकर मनुष्य जाति के चार विभाग कर दिये। वे ही चार विभाग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कहाते हैं। शास्त्रों में भी यह प्रमाण मिलता है कि अन्य सब लोकों की सृष्टि ठीक चलती रही। उच्च लोकों में देवगण और अधोलोकों में असुरगण जो सब भोगलोक हैं, ब्रह्माण्ड के पूर्वसंस्कारों के अनुसार अपने–अपने संस्कारों को लेकर जन्मे हुए भोग शरीर प्राप्त नाना देवयोनियों के देव पिण्डधरी जीवगण मर्यादा से चलते रहे। परंतु हमारी यह पृथ्वी मृत्युलोक होने से और कर्म करने में यहाँ पूर्ण स्वाधीनता रहने से प्रथम सृष्टि में उत्पन्न ब्राह्मणों के कर्मों में फेर पड़ने लगा। फिर मनुष्यों के ब्राह्मणादि विभाग इस प्रकार से किये गये है कि, वे चारों बंध बन गये इन्हीं चारों बंधों ने मनुष्य जाति की गिरती हुई धारा को रोका है और अभी तक वे चारों बंध मानव सृष्टि की आदि भूमि भारतद्वीप में टूटी–फूटी दशा में सबको दिखायी पड़ते है।

यह वर्णाश्रम बंध प्रत्येक कल्प में सृष्टि की आदि अवस्था में बांधे जाने से इसे सृष्टि कहते है और कल्पान्तर में होते रहने से अनादि भी कह सकते हैं। इस कारण वेदों की तरह इसका आविर्भाव–तिरोभाव होता रहता है। तत्वतः वर्णाश्रम अनादि ही है। इस सिद्धांत को वेद और सब शास्त्रों ने एक वाक्य होकर स्वीकार किया है। दूसरी ओर वर्णाश्रम सत्य सिद्धांत से युक्त होने के कारण चाहे वर्णाश्रम बंध कैसी ही टूटी–फूटी अवस्था में हो जाये, किंतु इसका नाश नहीं हो सकता। क्योंकि आध्यात्मिकता सत्य होने के कारण आध्यात्मिक उन्नतिशील मनुष्य जाति का एक बार ही पृथ्वी से लोप नहीं हो सकता।

इस बंध के संबंध में एक अलौकिक औपनिशदिक दृश्य शास्त्रों में खींचा गया है। जिसके पाठ करने से इस लोकोत्तर सामाजिक श्रृंखला (सोशियोलॉजी) की अपूर्वता, असाधारणता और मधुरता बुद्धिमानों के ध्यान में आवेगी। भगवान शम्भु नित्यपितृगण जो एक श्रेणी के देवता हैं, उनसे कहते हैं– देखो, मेरी श्यामा प्रकृति के दो रूप हैं। वही जड़रूपा है और वही जीवभूता चेतनमयी है। वह अज्ञानपूर्ण जड़रूप धारणा करके सदा सृष्टि को प्रकट करती है और चेतनमयी स्रोतस्विनी होकर मेरे स्वरूप पारावार में प्रवेश करती है। यह चिन्मयी नदी जड़मय महापर्वत से निकल कर प्रथम उद्भिज्ज, तदन्तर स्वदेज, तदनन्त, अण्डज, तदनन्तर जरायुज नामधारी खाद में सरलता से बहती हुई मनुष्य लोक रूपी

अधित्यका में पहुँचती है। उस अधित्यका के नीचे महती उपत्यकाएँ और गहर आदि विद्यमान हैं। जिसमें उस पवित्र तरणि का जल स्थान–स्थान पर स्वतः ही बह जाया करता है। हे पितृगण! उस स्रोत को अव्याहत, नरीन्ध्र और अविच्छिन रखकर नदी की धारा को धरातल पर सरल रखने के लिये वर्णाश्रम के आठ बंध बांधे गये हैं। इसी कारण वह अलौकिक त्रिलोकपावनी नदी सरल पथ को अवलम्बन करके मुझमें परमानन्द प्राप्त के हेतु प्रवेश करती है। हे पितृगण! इसमें आप लोग बिस्मित न हों। देवतागण उस नदी में आनन्दपूर्वक अवगाहन करके अभ्युदय को प्राप्त होते हैं और ऋषिगण उस नदी के दोनों तटों पर समासीन तथा ब्रह्मध्यान में मग्न होकर निःश्रैयसपद को प्राप्त करते हैं। आप लोग निरंतर उन बंधों को सुदृढ़ रखने के लिये उनके पास रहकर उनकी रक्षा करने में प्रवृत्त हों। आपके इस जगतमंगलकर शुभ कार्य में सदाचारी ब्राह्मणगण और सती नारियां सदा सहायक रहेंगी–

**अत्रैकोपनिषद्दृश्यमन्तिके वः स्वधाभुजः।**
**गुह्यां प्रकाशयेत्यन्तमद्भुतं तत्प्रपश्यत।।**
**श्यामायाः प्रकृतैर्मे स्तो द्वे रूपे परमाद्भुते।**
**यतः सैव जड़ा जीवभूता चैतन्मरूयपि।।**
**अज्ञानपूर्णरूपेण जडरूपं धरत्यसौ।**
**सृष्टिं प्रकाशयेच्छश्वनात्र कंचन संशयः।।**
**असौ चैतन्यपूर्ण च भूत्वा स्रोतस्विनी मम।**
**स्वस्वरूपात्म के नित्यं पारावारे विषत्यहो।।**
**सरिन्निग्रत्य चिद्र पा सा महाद्रेर्जडात्मकात्।**
**उद्भिज्जे स्वेदजे चैवमण्डजे च जरायुजे।।**
**सलीलं खातरूपेडलं प्रवहन्ती स्वाधाभुजः।**
**मर्त्यलोकाधित्यकायां निर्बाधं ब्रजति स्वयभू।।**
**तस्या अधित्यकाया हि निम्नस्थाश्चैकपार्श्वतः।**
**उपत्यका महात्यच विद्यन्ते गह्वरादयः।।**
**यत्र तस्याः पवित्रायास्तरङिण्या जलं स्वताः।**
**स्थाने स्थाने वहिन्नत्यं निर्गच्छति स्वभावतः।।**

इस प्रकार से आध्यात्मिक उन्नतिशील मनुष्य जाति को चिरजीवी बनाने के लिये इस संबंध की महिमा वेद और शास्त्रों में बहुत कुछ गायी गयी है, अभी तक मनुष्य की आदि जन्मभूमि भारतद्वीप में देखने और सुनने में आती है। इससे निरपेक्ष होकर सृष्टि विज्ञान को हृदयंगम करने वाले, भारतद्वीप की प्रकृति और ऐश्वर्य के महत्व को रागद्वेषशून्य होकर समझने वाले और वर्णाश्रम धर्मरूपी लोकोत्तर समाज विज्ञान (सोशियोलॉजी) की दूरदर्शिता का अनुभव करने वाले बुद्धिमान विद्वज्जन यह समझकर आनन्द प्राप्त कर सकेंगे कि, भारतद्वीप ही आदि सृष्टि की प्राकट्य भूमि है और भारतवर्ष का वर्णाश्रमरूपी आदि मनुष्य समाज विज्ञान संसार में अलौकिक है।

## संदर्भ

1. विष्णुभावगत–स्कन्ध 3
2. मनुस्मृति– अ–1.1
3. महाभारत, तीर्थयात्रापर्व, अ.82
4. तैत्तिरीयसंहिता–द्वितीय वल्ली
5. शम्भुगीता, अध्याय 4